विषय - सूची

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

अध्याय 1
प्रारंभिक

1 संक्षिप्त नाम और विस्तार

2 अधिनियम का लागू होना

3 परिभाषाएँ

4 अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव

अध्याय 2
हिन्दू विवाह

5 हिन्दू विवाह के लिए शर्तें

6 विलोपित

7 हिन्दू विवाह के लिए कर्मकाण्ड

8 हिन्दू विवाह का रजिस्ट्रीकरण

अध्याय 3
दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक प्रथक्करण

9 दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन

10 न्यायिक पृथक्करण

अध्याय 4
विवाह की अकृतता और विवाह विच्छेद

11 शून्य विवाह

12 शून्यकरणीय विवाह

13 विवाह-विच्छेद

13A. विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को वैकल्पिक अनुतोष

13B. पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद

13C. विवाह के असुधार्य भंग के आधार पर विवाह-विच्छेद

13D. कठिनाई के आधार पर अर्जी का विरोध करने का पत्नी का अधिकार

13E. अपत्यों को प्रभावित करने वाले विवाह-विच्छेद की डिक्री पर निर्बन्धन

14 विवाह से एक वर्ष के भीतर विवाह-विच्छेद के लिये कोई अर्जी उपस्थापित न की जाएगी

15 कब विवाह-विच्छेद प्राप्त व्यक्ति पुन: विवाह कर सकेंगे

16 शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के अपत्यों की धर्मजता

17 द्विविवाह के लिए दंड

18 हिन्दू विवाह की कतिपय अन्य शर्तो के उल्लंघन के लिए दण्ड

अध्याय 5

अधिकारिता और प्रक्रिया

19 वह न्यायालय जिसमें अर्जी उपस्थापित की जाएगी

20 अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन

21 1908 के अधिनियम संख्यांक 5 का लागू होना

21A. कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति

21B. इस अधिनियम के अधिन अर्जियों के विचारण और निपटारे से संबंधित विशेष उपबंध

21C. दस्तावेजी साक्ष्य

22 कार्यवाहियों का बन्द कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना

23 कार्यवाहियों में डिक्री

23A. विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को अनुतोष

24 वाद लंबित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय

25 स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण

26 अपत्यों की अभिरक्षा

27 सम्पत्ति का व्ययन

28 डिक्रियों और अदेशों की अपीलें

28A. डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन

अध्याय 6
व्यावृतियाँ और निरसन

29 व्यावृतियाँ

30 निरसित

[18 मई, 1995]

हिन्दुओं के विवाह से संबंधित विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियम।

भारत गणराज्य के छठे वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो:-

अध्याय 1
प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम और विस्तार --

1 यह अधिनियम हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 कहा जा सकेगा ।

2 इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है, जो उक्त् राज्यक्षेत्रों के बाहर हों ।

2. अधिनियम का लागू होना --

1 वह अधिनियम लागू है:-

क ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अन्तर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्रम्हासमाज, प्रार्थनासमाज या आर्यसमाज के अनुयायी भी आते है, धर्मत: हिन्दू हो;

ख ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मत: जैन, बौद्ध या सिक्ख हो; तथा

ग ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति को जो उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित हो और धर्मत: मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक कि यह साबित न कर दिया जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो ऐसा कोई भी व्यक्ति एतस्मिन उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भाग रूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होगा ।

स्पष्टीकरण -- निम्नलिखित व्यक्ति धर्मत: यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हैं:-

क कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता दोनों ही धर्मत: हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हों;

ख कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मत: हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुम्ब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था; तथा

ग कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो।

2 उपधारा 1 में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड 25 के अर्थ के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

3 इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिन्दू" पद का ऐसा अर्थ लगाया जाएगा मानो उसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो यद्यपि धर्मत: हिन्दू नहीं है तथापि ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा में अन्तर्विष्ट उपबंधों के आधार पर लागू होता है ।

3. परिभाषाएँ --

इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो:-

क "रूढि" और "प्रथा", पद ऐसे किसी भी नियम का संज्ञान कराते हैं जिसने दीर्घकाल तक निरंतर और एकरूपता से अनुपालित किए जाने के कारण किसी स्थानीय क्षेत्र, जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुम्ब के हिन्दुओं में विधि का बल अभिप्राप्त कर लिया हो:-

परन्तु यह तब जबकि वह नियम निश्चित हो, और अयुक्तियुक्त् या लोकनीति के विरूद्ध न हो; तथा

परन्तु यह और भी कि ऐसे नियम की दशा में जो एक कुटुम्ब को ही लागू हो, उसकी निरंतरता उस कुटुम्ब द्वारा बन्द न कर दी गई हो;

ख "जिला न्यायालय" से अभिप्रेत है ऐसे किसी क्षेत्र में, जिसके लिए कोई नगर सिविल न्यायालय हो, वह न्यायालय और अन्य किसी क्षेत्र में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय तथा इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी अन्य सिविल न्यायालय आता है जिसे राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम में व्यवहृत बातों के बारे में अधिकारितायुक्त् विनिर्दिष्ट कर दे;

ग "पूर्ण रक्त्" और "अर्ध रक्त्" -- कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे से पूर्ण रक्त् से संबंधित तब कहे जाते हैं जबकि वे एक ही पूर्वज से एक ही पत्नी द्वारा अवजनित हों और अर्ध रक्त् से तब जब कि वह एक ही पूर्वज से किन्तु भिन्न पत्नियों द्वारा अवजनित हों;

घ "एकोदर रक्त्" -- दो व्यक्ति एक दूसरे से एकोदर रक्त् से संबंधित तब कहे जाते हैं जबकि वे एक ही पूर्वजा से किन्तु भिन्न पतियों द्वारा अवजनित हों ।

स्पष्टीकरण -- खण्ड ग और घ में "पूर्वज" के अंतर्गत पिता और "पूर्वजा" के अंतर्गत माता आती है;

ड "विहित" से अभिप्रेत है इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित;

च (i) "सपिंड नातेदारी", जब निर्देश किसी व्यक्ति के प्रति हो तो, माता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परम्परा में तीसरी पीढ़ी तक जिसके अन्तर्गत तीसरी पीढ़ी भी आती है और पिता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परम्परा में पांचवी पीढ़ी तक जिसके अंतर्गत पांचवी पीढ़ी भी आती है जाती है, हर एक दशा में वंश परंपरा सम्पृक्त् व्यक्ति से, जिसे पहले पीढ़ी का गिना जाएगा, ऊपर की ओर चलेगी;

(ii) दो व्यक्ति एक दूसरे के "सपिंड" तब कहे जाते हैं जबकि या तो एक उसमें दूसरे का सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर पूर्वपुरूष हो या जबकि उनका ऐसा कोई एक ही पारंपरिक पूर्वपुरूष, जो निर्देश उनमें से जिस किसी के भी प्रति हो, उससे संपिड नातेदारी की सीमाओं के भीतर हो;

(छ) "प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियाँ -- दो व्यक्ति प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियों के भीतर कहे जाते हैं:-

(i) यदि एक उनमें से दूसरे का पारंपरिक पूर्वपुरूष हो; या

(ii) यदि एक उनमें से दूसरे के पारंपरिक पूर्वपुरूष या वंशज की पत्नी या पति रहा हो; तो

(iii) यदि एक उनमें से दूसरे के भाई की या पिता अथवा माता के भाई की, या पितामह अथवा पितामही के भाई की या मातामह अथवा मातामही के भाई की पत्नी रही हो; या

(iv) यदि वे भाई और बहिन, ताया, चाचा और भतीजी, मामा और भांजी, फूफी और भतीजा, मौसी और भांजा या भाई-बहिन के अपत्य, भाई-भाई के अपत्य अथवा बहिन-बहिन के अपत्य हों;

स्पष्टीकरण -- खण्ड (च) और (छ) के प्रयोजनों के लिये नातेदारी के अन्तर्गत आती है:-

(i) पूर्ण रक्त् की नातेदारी, तथैव अर्ध या एकोदर रक्त् की नातेदारी;

(ii) धर्मज रक्त् की नातेदारी, तथैव अधर्मज रक्त् की नातेदारी;

(iii) रक्त्जन्य नातेदारी, तथैव दत्तक नातेदारी,

और उन खण्डों में नातेदारी संबंधी सभी पदों का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा ।

4.अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव -- इस अधिनियम में अभिव्यक्त् रूप से अन्यथा उपबन्धित के सिवाय:-

(क) हिन्दू विधि का कोई ऐसा शास्त्र वाक्य, नियम या निर्वचन या उस विधि की भागरूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा जो इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिये इस अधिनियम में उपबंध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त कोई भी अन्य विधि, वहाँ तक प्रभावहीन हो जाएगी जहाँ तक कि वह इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो ।

अध्याय 2

हिन्दू विवाह

***5. हिन्दू विवाह के लिए शर्तें --** दो हिन्दुओं के बीच विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं, अर्थात्:-

(i) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से, न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो;

[1][(ii) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार:-

(क) चित्त-विकृति के परिणामस्वरूप विधिमान्य सम्मति देने में असमर्थ न हो; या

(ख) विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकास से पीड़ित न रहा हो कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए अयोग्य हो; या

(ग) उसे उन्मत्तता या मिरगी का बार-बार दौरा न पड़ता हो [2][***];]

(iii) विवाह के समय वर ने [3][इक्कीस वर्ष] की आयु और वधू ने [3][अठारह वर्ष] की आयु पूरी कर ली हो;

(iv) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियों के भीतर न हो;

(v) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे एक दूसरे के सपिण्ड न हों;

[1] [***]

---

[1] 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 2 द्वारा खण्ड (ii) के स्थान पर (27-5-1976 से) प्रतिस्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं.39 की धरा 2 द्वारा (29-12-1999 से) विलोपित ।

[3] 1978 के अधिनियम सं.2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा "अठारह वर्ष" और "पन्द्री वर्ष" क्रमश: के स्थान पर (1-10-1978 से) प्रतिस्थापित ।

6. विवाहार्थ संरक्षकता -- [बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) विलोपित ।]

7. हिन्दू विवाह के लिए कर्मकाण्ड -- (1) हिन्दू विवाह उसके पक्षकारों में से किसी को भी रूढिगत रीतियों और कर्मकाण्ड के अनुसार अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(2) जहां कि ऐसी रीतियों और कर्मकाण्ड के अन्तर्गत सप्तवादी (अर्थात अग्नि के समक्ष वर और वधू द्वारा संयुक्तत: सात पद चलना) आती हो वहां विवाह पूर्ण और आबद्धकर तब होता है जब सातवां पद चल लिया जाता है

8 **हिन्दू विवाह का रजिस्ट्रीकरण --** (1) राज्य सरकार हिन्दू विवाहों का साबित किया जाना सुकर करने के प्रयोजन से ऐसे नियम[2] बना सकेगी जो यह उपबंधित करें कि ऐसे किसी विवाह के पक्षकार अपनविवाह से सम्बन्द्ध विशिष्टियों को इस प्रयोजन के लिये रखे गये हिन्दू विवाह रजिस्टार में ऐसी रीति में और ऐसी शर्तो के अध्यधीन, जैसी कि विविह की जाएँ, प्रविष्ट करा सकेंगे ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह यह उपबन्ध कर सकेगी कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट विशिष्टियों का प्रविष्ट किया जाना उस राज्य में या उसके किसी भाग विशेष में, चाहे सभी दशाओं में, चाहे ऐसी दशाओं में जो विनिर्दिष्ट की जाएँ, वैवश्यक होगा और जहाँ कि कोई ऐसा निर्देश निकाला गया हो, वहाँ इस निमित्त बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जुर्माने से, जो कि पच्चीय रूपये तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।

(3) इस धारा के अधीन बनाए गए सभी नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधानमण्डल के समक्ष रखे जाएंगे ।

(4) हिन्दू विवाह रजिस्टर निरीक्षण के लिए सभी युक्तियुक्त समय पर खुला रहेगा और अपने में अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राहा होगा तथा उसमें से प्रमाणित उद्धरण, आवेदन करने और रजिस्ट्रार को विहीन फीस का संदाय करने पर, उसके द्वारा दिये जाएंगे ।

(5) इस धारा में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी प्रविष्टि करने में हुआ लोप किसी हिन्दू विवाह की विधिमान्यता पर प्रभाव न डालेगा ।

---

1 1978 के अधिनियम सं.2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) खण्ड (vi) विलोपित ।

2 देखे मध्यप्रदेश हिन्दू विवाह (रजिस्ट्रीकरण) नियम, 1956 ।

अध्याय 3
दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण

***9** **दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन --** [1][***] जबकि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना प्रत्याहृत कर लिया हो तब व्यथित पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए न्यायालय में अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसी अर्जी में किए गए कथनों के सत्य के बारे में तथा इस बात के बारे में कि इसके लिए कोई वैध आधार नहीं है कि आवेदन मंजूर क्यों न कर लिया जाए अपना समाधान हो जाने पर दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन डिक्री कर सकेगा ।

[2][**स्पष्टीकरण --** जहाँ यह प्रशन उठता है कि क्या साहचर्य के प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है ।**]**

[3][***]

****10** **न्यायिक पृथक्करण --** [4][(1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।**]**

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनो पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायलय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को बिखण्डित कर सकेगा ।

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 3 द्वारा (27-5-1976 से) कोष्ठक और अंक "(1)" विलोपित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 3 द्वारा (27-5-1976 से) जोड़ा गया ।

3 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 3 द्वारा (27-5-1976 से) उपधारा (2) विलोपित ।

4 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 4 द्वारा (27-5-1976 से) उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

अध्याय 4
विवाह की अकृतता और विवाह विच्छेद

***11** **शून्य विवाह --** इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, यदि वह धारा 5 के खण्ड (i), (iv) और (V) में विनिर्दिष्ट शर्तों में से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा [1][दूसरे पक्षकार के विरूद्ध] उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा।

****12** **शून्यकरणीय विवाह --** (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात् निम्नलिखित आधारों में से किसी पर भी शून्यकरणीय होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल किया जा सकेगा:-

[2][(क) कि प्रत्यर्थी की नपुसंकता के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है;]

(ख) कि विवाह धारा 5 के खण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट शर्तो का उल्लंघन करता है; या

(ग) कि अर्जीदार की सम्मति या जहां कि [3][धारा 5 जिस रूप में बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) के प्रारंभ के ठीक पूर्व विद्यमान थी उसे रूप में उसके अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो] वहां ऐसे संरक्षक की सम्मति, बल प्रयोग द्वारा [4][या कर्मकाण्ड की प्रकृति के बारे में या प्रत्यर्थी से संबंधित किसी तात्विक तथ्य या परिस्थिति के बारे में कपट द्वारा] अभिप्राप्त की गई थी; या

(घ) कि प्रत्यर्थी विवाह के समय अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा गर्भवती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, विवाह के बातिलीकरण की कोई अर्जी:-

(क) उपधारा (1) के खंड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर ग्रहण न की जाएगी, यदि:-

(i) अर्जी, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने या कपट का पता चल जाने के एकाधिक वर्ष के पश्चात् दी जाए; या

---

[1] 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 5 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 6 द्वारा (27-5-1976 से) खण्ड (क) प्रतिस्थापित ।

3 1978 के अधिनियम सं.2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) "धारा 5 के अधीन अपेक्षित हो" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

4 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 6 द्वारा (27-5-1976 से) "या कपट" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ii) अर्जीदार, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के या कपट का पता चल जाने के पश्चात् विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ अपनी पूर्ण सम्मति से पति या पत्नी के रूप में रहा या रही है;

(ख) उपधारा (1) के खण्ड (घ) में विनिर्दिष्ट आधार पर तब तक ग्रहण न की जाएगी जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो जाऐ कि:-

(i) अर्जीदार विवाह के समय अभिकथित तथ्यों से अनभिज्ञ था;

(ii) कार्यवाही, इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, ऐसे प्रारम्भ के एक वर्ष, के भीतर और ऐसे प्रारंभ के पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों की दशा में, विवाह की तारीख से एक वर्ष के भीतर संस्थित की गई है; और

(iii) [1][उक्त आधार] के अस्तित्व का अर्जीदार को पता चलने के समय से अर्जीदार की सम्मति से कोई वैवाहिक संभोग नहीं हुआ है ।

***13 विवाह-विच्छेद --** (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो तो चाहे पश्चात् पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि:-

[2][(i) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है; या

(i क) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है; या

(i ख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि भर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है; या]

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है; या

---

[1] 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 6 द्वारा (27-5-1976 से) "डिक्री के आधार" के स्थान पर प्रतिस्थापित।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 7 द्वारा (27-5-1976 से) खण्ड (i) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[1][(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप् से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकास से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण -- इस खंड में:-

(क) "मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकार या नि:शक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घ स्थायी विकार या नि:शक्तता (चाहे इसमें बुद्धि की अवसामान्यत: हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार का आचरण आसामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं; या**]**

(iv) [2] **[***]** उग्र और असाध्य कुष्ठ से पीड़ित रहा है; या

(v) [2] **[***]** संचारी रूप से रतिज रोग से पीड़ित रहा है; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है;

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वाभाविकत: सुना होता; [3]**[***]**

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 7 द्वारा (27-5-1976 से) खण्ड (iii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 7 द्वारा (27-5-1976 से) कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।

3 1964 के अधिनियम सं.44 की धारा 2 द्वारा "या" का लोप किया गया ।

[1][**स्पष्टीकारण** -- इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है, जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरूद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की अपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तदनुसार लगाए जाएंगे ।**]**

[2][***]

[3][***]

[3][(1क) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित की डिक्री के कारण के पश्चात् विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा:-

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के कारण के पश्चात् [5][एक वर्ष] या उसमें ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का कोई पुनारम्भ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् [4][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।]

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी:-

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या कि अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठापन के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था:

परन्तु यह तब जब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थापन के समय जीवित हो; या

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 7 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

2 1964 के अधिनियम सं.44 की धारा 2 द्वारा खण्डों (viii) और (ix) का लोप किया गया ।

3 1964 के अधिनियम सं.44 की धारा 2 द्वारा अन्त: स्थापित ।

4 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 7 द्वारा (27-5-1976 से) "दो वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् बालात्संग, गुदामैथुन या [1][पशुगमन का दोषी रहा है; या]

[2][(iii) कि हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन [या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की तत्समान धारा 488 के अधीन] कार्यवाही में, पत्नी को भरण-पोषण दिलवाने के लिए पति के विरूद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश के पारित किए जाने के समय से एक वर्षया उससे ऊपर की कालावधि पर पक्षकारों के बीच सहवास का पुनारम्भ नहीं हुआ है;

(iv) कि उसका विवाह (चाहे विवाहोत्तर सम्भोग हुआ हो या नहीं) उसकी पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने के पूर्व अनुष्ठापित किया गया था और उसने पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् किन्तु अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का निराकरण कर दिया है ।

स्पष्टीकरण -- यह खण्ड उस विवाह को भी लागू होगा, जो विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया है ।]

[3][13क. **विवाह-विच्छेद की कार्यवाहहियों में प्रत्यर्थी को वैकल्पिक अनुतोष --** इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी पर, उस दशा को छोड़कर जिसमें अर्जी धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), (vi) और (vii) में वर्णित आधारों पर है, विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकेगा ।]

[3] [*13ख. **पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद --** (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गये हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 7 द्वारा (27-5-1976 से) "पशुगमन" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 7 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

3 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 8 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात् जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिग्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाऐगा ।]

विवाह विधियाँ (संशोधन) विधेयक, 2010 (विधेयक क्र. 41 सन् 2010 द्वारा उपधारा (2) का प्रस्तावित संशोधन (अब तक प्रवृत नहीं)

(2) उपधारा (1) के अधीन कोई अर्जी प्राप्त होने पर, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुए है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।

विवाह विधियाँ (संशोधन) (विधेयक, 2010 विधेयक क्र. 41 सन् 2010 द्वारा नई धाराओं 13ग, 13घ और 13ड का प्रस्तावित अन्त:स्थापन (अब तक प्रवृत्त नहीं)

13ग. विवाह के असुधार्य भंग के आधार पर विवाह-विच्छेद -- (1) विवाह के असुधार्य भंग के आधार पर, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिये अर्जी, विवाह के **[**चाहे विवाह विधियाँ (संशोधन) अधिनियम, 2010 के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो**]** किसी भी एक पक्षकार द्वारा जिला न्यायालय को प्रस्तुत की जा सकेगी ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी को सुनने वाला न्यायालय, तब तक विवाह का असुधार्य भंग होना अभिनिर्धारित नहीं करेगा जब तक उसका यह समाधान न हो जाए कि अर्जी प्रस्तुत करने के ठीक पूर्ववर्ती तीन वर्षो से अन्यून की सतत कालावधि के लिये, विवाह के पक्षकार अलग-अलग रह रहे हैं ।

(3) यदि, साक्ष्य पर, उपधारा (2) में उल्लिखित तथ्य के बारे में, न्यायालय का समाधान हो जाता तो, जब तक कि उसका समस्ता साक्ष्य पर समाधान न हो जाए कि विवाह का असुधार्य भंग नहीं हुआ है, वह, इस अधिनियम के उपबंधों के अध्यधीन, विवाह-विच्छेद की डिक्री प्रदान करेगा ।

(4) उपधारा (2) के प्रयोजन के लिये, विचार करते समय कि क्या वह कालावधि जिसके लिये विवाह के पक्षकार अलग-अलग रहे, सतत रही, किसी एक ऐसी कालावधि को हिसाब में नहीं लिया जाएगा (जो कुल मिलाकर तीन माह से अधिक न हो) जिसके दौरान पक्षकार फिर से साथ में रहने लगे, किन्तु कोई अन्य कालावधि जिसके दौरान पक्षकार एक साथ रहने लगे, उस कालावधि के भाग के रूप में नहीं गिनी जाएगी जिसके लिये विवाह के पक्षकार अलग-अलग रहने लगे।

(5) उपधारा (2) और (4) के प्रयोजनों के लिए, एक पति और पत्नी का अलग-अलग रहना समझा जाएगा जब तक कि वे एक ही गृहस्थी में एक साथ न रहने लगें, और इस धारा में विवाह के पक्षकारों के एक साथ रहने के प्रति निर्देश का अर्थ, एक ही गृहस्थी में एक साथ रहने के निर्देश से लगाया जाएगा।

13घ. कठिनाई के आधार पर अर्जी का विरोध करने का पत्नी का अधिकार -- (1) जहाँ कि पत्नी, धारा 13ग के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन की अर्जी में प्रत्यर्थिया हो, वह इस आधार पर डिक्री प्रदान करने का विरोध कर सकेगी कि विवाह के विघटन के परिणामस्वरूप उसे गंभीर वित्तीय कठिनाई होगी और यह कि सभी परिस्थितियों में विवाह का विघटन गलत होगा।

(2) जहाँ कि इस धारा के आधार पर डिक्री के प्रदान किये जाने का विरोध किया जाता है, तब:-

(क) यदि न्यायालय यह पाता है कि अर्जीदार धारा 13ग में उपवर्णित आधार पर विश्वास किये जाने का हकदार है; और

(ख) यदि, इस धारा के अलावा, न्यायालय को अर्जी पर डिक्री प्रदान करनी हो,

तो न्यायालय, विवाह के पक्षकारों का आचरण और उन पक्षकारों के और किन्हीं अपत्यों के या अन्य सम्बन्धित व्यक्तियों के हितों के साथ ही साथ परिस्थितियों को विचार में लेगा, और यदि, न्यायालय इस अभिमत का है कि विवाह के विघटन के परिणामस्वरूप प्रत्यर्थिया को गंभी वित्तीय कठिनाई होगी, और यह, सभी परिस्थितियों में गलत होगा कि विवाह के विघटित कर दिया जाए, तो वह अर्जी को खारिज कर देगा, या किसी समुचित मामले में कार्यवाहियों को तब तक के लिये रोक देगा जब तक कि उसके समाधनप्रद रूप में कठिनाई को दूर करने की व्यवस्था न हो जाए।

13ङ. अपत्यों को प्रभावित करने वाले विवाह-विच्छेद की डिक्री पर निर्बन्धन -- न्यायालय, धारा 13ग के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित नहीं करेगा जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो जाए

कि विवाह के पक्षकारों के वित्तीय सामर्थ्य के अनुसार, विवाह से उत्पन्न हुए अपत्यों के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त व्यवस्था कर दी गई है ।

स्पष्टीकरण -- इस धारा में अभिव्यक्ति "अपत्यों" से तात्पर्य है:-

(क) अवयस्क अपत्य;

(ख) अविवाहित या विधवा पुत्रियाँ जिनके पास स्वयं को संभालने के लिये वित्तीय साधन न हों;

(ग) अपत्य, जिन्हें उनकी शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य की विशेष स्थिति के कारण, देखरेख की आवश्यकता है और जिनके पास स्वयं को संभालने के लिए वित्तीय साधन न हों ।

14. **विवाह से एक वर्ष भीतर विवाह-विच्छेद के लिये कोई अर्जी उपस्थापित न की जाएगी --** (1) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन की कोई अर्जी ग्रहण करने के लिए तब तक सक्षम न होगा [1]**[**जब तक कि विवाह की तारीख से उस अर्जी के पेश किए जाने की तारीख तक एक वर्ष बीत न चुका हो**]**:

परन्तु न्यायालय उन नियमों के अनुसार किए गए आवेदन पर, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित बनाए जाएं, किसी अर्जी का, विवाह की तारीख से [1]**[**एक वर्ष बीतने के पूर्व**]** भी इस आधार पर उपस्थापित किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा कि मामला अर्जीदार के लिए असाधारण कष्ट का है या प्रत्यर्थी की असाधारण दुराचारिता से युक्त है; किन्तु यदि अर्जी की सुनवाई के समय न्यायालय को यह प्रतीत हो कि अर्जीदार ने अर्जी को उपस्थापित करने की इजाजत किसी दुर्व्यपदेशन या मामले की प्रकृति के प्रच्छादन द्वारा अभिप्राप्त की थी तो वह, डिक्री देने की दशा में, इस शर्त के अध्यधीन डिक्री दे सकेगा कि डिक्री तब तक सप्रभाव न होगी जब तक कि विवाह की तारीख से **[1][**एक वर्ष का अवसान**]** न हो जाए अथवा उस अर्जी को ऐसी किसी अर्जी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज कर सकेगा जो **[1][**उक्त् एक वर्ष के अवसान**]** के पश्चात् उन्हीं या सारत: उन्हीं तथ्यों पर दी जाए जो ऐसे खारिज की गई अर्जी के समर्थन में अभिकथित किए गए थे ।

(2) विवाह की तारीख से **[1][**एक वर्ष के अवसान**]** से पूर्व विवाह-विच्छेद की अर्जी उपस्थापित करने की इजाजत के लिए इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन का निपटारा करने में न्यायालय उस विवाह से उत्पन्न किसी अपत्य के हितों पर तथा इस बात पर ध्यान रखेगा कि पक्षकारों के बीच **[1][**उक्त एक वर्ष**]** के अवसान से पूर्व मेल-मिलाप की कोई युक्तियुक्त संभाव्यता है या नहीं ।

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 9 द्वारा (27-5-1976 से) प्रतिस्थापित ।

*15. **कब विवाह-विच्छेद प्राप्त व्यक्ति पुन: विवाह कर सकेंगे --** जबकि विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरूद्ध अपील करने का कोई अधिकार हो न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो तो अपील करने के समय का कोई अपील उपस्थापित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की गई हो किन्तु खारिज कर दी गई हो तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुन: विवाह करना विधिपूर्ण होगा ।

[1][***]

[2][16. **शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के अपत्यों की धर्मजता --** (1) इस बात के होते हुए भी कि विवाह धारा 11 के अधीन अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह का ऐसा अपत्य धर्मज होगा, जो विवाह के विधिमान्य होने की दशा में धर्मज होता, चाहे ऐसे अपत्य का जन्म विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् हुआ हो और चाहे उस विवाह के सम्बन्ध में अकृतता की डिक्री इस अधिनियम के अधीन मंजूर की गई हो या नहीं और चाहे वह विवाह इस अधिनियम के अधीन अर्जी से भिन्न अभिनिर्धारित किया गया हो या नहीं ।

(2) जहाँ धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय विवाह के सम्बन्ध में अकृतता की डिक्री मंजूर की जाती है वहाँ डिक्री की जाने से पूर्वजनित या गर्भाहित ऐसा कोई अपत्य जो यदि विवाह डिक्री की तारीख को अकृत किए जाने के बजाय विघटित कर दिया गया होता तो विवाह के पक्षकारों का धर्मज अपत्य होता, अकृतता की डिक्री होते हुए भी उनका अपत्य समझा जाएगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे विवाह के किसी ऐसे अपत्य को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा अकृत किया गया है, उसके माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति में या सम्पत्ति के लिए कोई अधिकार किसी ऐसी देशा में प्रदान करती है जिसमें कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो वह अपत्य अपने माता-पिता का धर्मज अपत्य न होने के कारण ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने में असमर्थ होता ।]

17. **द्विविवाह के लिए दंड -- यदि अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दो हिन्दुओं की बीच अनुष्ठापित किसी विवाह की तारीख पर ऐसे विवाह के किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित था या थी तो ऐसा विवाह शून्य होगा और भारतीय दण्ड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और 495 के उपबन्ध उसे तदनुसार लागू होंगे ।

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 10 द्वारा (27-5-1976 से) परन्तुक विलोपित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 11 द्वारा (27-5-1976 से) प्रतिस्थापित ।

18. हिन्दू विवाह की कतिपय अन्य शर्तो के उल्लंघन के लिए दण्ड -- हर व्यक्ति जो अपना कोई ऐसा विवाह उपाप्त करेगा जो धारा 5 के खण्ड (iii), (iv) [1]**[**और (v)] में विनिर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया हो वह:-

[2]**[**(क) धारा 5 के खण्ड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सश्रम कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक लाख रूपये तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से;**]**

(ख) धारा 5 के खण्ड (iv) या खण्ड (v) में विनिर्दिष्ट शर्ते के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रूपये तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से; [3]**[***]**

[3]**[***]**

दण्डित किया जाएगा ।

अध्याय 5
अधिकारिता और प्रक्रिया

[4]**[*19. वह न्यायालय जिसमें अर्जी उपस्थापित की जाएगी --** इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी उस जिला न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी जिसकी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर:-

(i) विवाह का अनुष्ठापन हुआ था, या

(ii) प्रत्यर्थी, अर्जी के पेश किये जाने के समय, निवास करता है, या

(iii) विवाह के पक्षकारों ने अंतिम बार एक साथ निवास किया था, या

[5]**[**(iii-क)पत्नी के अर्जीदार होने की दशा में, याचिका प्रस्तुत करने वाले दिनांक को, जहाँ वह निवास कर रही है; या**]**

---

1 1978 के अधिनियम सं.2 की धारा 6 और अनुचूची द्वारा (1-10-1978 से) "(v) और (vi)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

2 बाल विवाह प्रतिषेध अधिनियम, 2006 (क्र. 6 सन् 2007) की धारा 20 द्वारा (1-11-2007 से) खण्ड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

3 1978 के अधिनियम सं.2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1-10-1978 से) शब्द "और" तथा खण्ड (ग) विलोपित ।

4 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 12 द्वारा (27-5-1976 से) धारा 19 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

5 2003 के अधिनियम सं.50 की धारा 4 द्वारा (23-12-2003 से) अन्त: स्थापित ।

(iv) अर्जीदार के अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रहा है, यह ऐसे मामले में, जिसमें प्रत्यर्थी उस समय ऐसे राज्यक्षेत्र के बाहर निवास कर रहा है जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है अथवा वह जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में, यदि वह जीवित होता विकतया सुना होता ।**]**

आवेदन पत्र की घोषणीयता - धारा 19 9(iii क) द्वारा पत् भी अधिनियम के तहत कोई याचिका जिला न्यायालय में प्रस्तुत करने की हकदार होती है । जिसकी अधिकारिता के भीतर वह याचिका के प्रस्तुत नहीं करने के दिनांक को निवास कर रही है -- इस प्रकार, विधान का आशय पत्नी को अधिनियम के तहत जिला न्यायालय में याचिका प्रस्तुत करने के लिए समर्थ करना है जिसकी अधिकारिता के भीतर वह निवास करती है ताकि स्त्री को यात्रा न करना पड़े और ऐसे न्यायालय में याचिका पेश न करना पडे जिसकी अधिकारिता के भीतर विवाह के टूटने के पश्चात् वह निवास नहीं कर रही है । महादेव ठाकरे बनाम श्रीमती चंचल गायकवाड़, 2011 (I) MANISA 86 (CG) = 2011 (I) CGLJ 379 = 2010 (5) MPHT 36 (CG).

20. अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन -- (1) इस धारा के अधीन उपस्थापित हर अर्जी उन तथ्यों को जिन पर अनुतोष का दावा आधारित हो इतने स्पष्ट तौर पर कथित करेगी जितना उस मामले की प्रक़ति अनुज्ञात करे [1]**[**और धारा 11 के अधीन अर्जी को छोड़कर ऐसी हर अर्जी यह भी कथित करेगी**]** की अर्जीदार और विवाह के दूसरे पक्ष के बीच कोई दुस्सनिघ नहीं है ।

(2) इस अधिनियम के अधीन दो जाने वाली हर अर्जी में अन्तर्विष्ट कथन बाद पत्रों के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति से अर्जीदार या अन्य समक्ष व्यक्ति द्वारा सत्यापित किये जायेंगे और सुनवाई के समय साक्ष्य के रूप में ग्राहा होंगे ।

21. 1908 के अधिनियम संख्यांक 5 का लागू होना -- इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के और उन नियमों के जो उच्च न्यायालय इस निमित बनाए, अध्यधीन यह है कि इस अधिनियम के अधीन सब कार्यवाहियाँ जहाँ तक हो सकेगा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) द्वारा विनियमित होगी ।

[2][21-क. कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति -- (1) जहाँ:-

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 13 द्वारा (27-5-1976 से) प्रतिस्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 14 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

(क) इस अधिनियम के अधीन कोई अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धरा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए पेश की गई है; और

(ख) उसके पश्चात् इस अधिनियम के अधीन कोई दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धरा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए, चाहे उसी जिला न्यायालय में अथवा उसी राज्य के या किसी भिन्न राज्य के किसी भिन्न जिला न्यायालय में पेश की गई है,

वहाँ ऐसी अर्जियों के सम्बन्ध में उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रीति से कार्यवाही की जाएगी ।

विवाह विधियाँ (संशोधन) विधेयक, 2010 (विधेयक क्र. 41 सन् 2010
द्वारा धारा 21क की उपधारा (1) का प्रस्तावित संशोधन
(अब तक प्रवृत नहीं)

उपधारा (1) में, शब्द और अंक "धारा 13" के पश्चात् दोनों स्थानों पर जहाँ वे आए हैं, शब्द, अंक और अक्षर "या धारा 13ग" अन्त:स्थापित किये जाएँ ।

(2) ऐसे मामले में जिसे उपधारा (1) लागू होती है:-

(क) यदि ऐसी अर्जियाँ एक ही जिला न्यायालय में पेश की जाती हैं तो दोनों अर्जियों का विचारण और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जाएगी;

(ख) यदि ऐसी अर्जियाँ भिन्न-भिन्न जिला न्यायालयों में पेश की जाती हैं तो बाद वाली पेश की गई अर्जी उस जिला न्यायालय को अन्तरित की जाएगी जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी, और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनका निपटारा उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ किया जाएगा जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी ।

(3) ऐसे मामले में, जिसे उपधारा (2) का खण्ड (ख) लागू होता है, यथास्थिति, वह न्यायालय या सरकार, जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से, जिसमें बाद वाली अर्जी पेश की गई है, उस न्यायालय को जिसमें पहले वाली अर्जी लम्बित है, अन्तरित करने के लिये सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन सक्षम है, ऐसी बाद वाली अर्जी का अन्तरण करने के लिए अपनी शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करेगी मानो वह उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए सशक्त की गई है ।]

[1][21-ख. इस अधिनियम के अधीन अर्जियों के विचारण और निपटारे से संबंधित विशेष उपबंध --

(1) इस अधिनियम के अधीन अर्जी का विचारण, जहाँ तक कि न्याय के हित से संगत रहते हुए उस विचारण के बारे में साध्य हो, दिन-प्रतिदिन तब तक निरन्तर चालू रहेगा जब तक कि वह समाप्त न हो जाए किन्तु उस दशा में नहीं जिसमें न्यायालय विचारण का अगले दिन से परे के लिये स्थगन करना उन कारणों से आवश्यक समझे जो लेखबद्ध किये जाएंगे ।

(2) इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी का विचारण जहाँ तक संभव हो शीघ्र किया जाएगा और प्रत्यर्थी पर अर्जी की सूचना की तामील होने की तारीख से छह मास के अन्दर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन हर अपील की सुनवाई जहाँ तक सम्भव हो शीघ्र की जाएगी और प्रत्यर्थी पर अपील की सूचना की तामील होने की तारीख से तीन मास के अन्दर सुनवाई समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।**]**

[1][21-ग. दस्तावेजी साक्ष्य -- किसी अधिनियमिति में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी यह है कि इस अधिनियम के अधीन अर्जी के विचारण को किसी कार्यवाही में कोई दस्तावेज साक्ष्य में इस आधार पर अग्राहा नहीं होगी कि वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित या रजिस्ट्रीकृत नही है ।**]**

[2][22. कार्यवाहियों का बन्द कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना --

(1) इस अधिनियम के अधीन हर कार्यवाही बन्द कमरे में की जाएगी और कि सी व्यक्ति के लिये ऐसी किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी बात को मुद्रित या प्रकाशित करना विधिपूर्ण नहीं होगा किन्तु उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय को छोड़कर जो उस न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा से मुद्रित या प्रकाशित किया गया है ।

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबन्धों के उल्लंघन में कोई बात मुद्रित या प्रकाशित करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रूपये तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।**]**

23. कार्यवाहियों में डिक्री -- (1) यदि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में, चाहे उसमें प्रतिरक्षा की गई हो या नहीं, न्यायालय का समाधान हो जाए कि:-

---

[1] 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 14 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 15 द्वारा (27-5-1976 से) धारा 22 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(क) अनुतोष अनुदत्त करने के आधारों में से कोई न कोई आधार विद्यमान है और अर्जीदार [1][उन मामलों को छोड़कर, जिनमें उसके द्वारा धारा 5 के खंड (ii) के उपखण्ड (क), उपखंड (ख) या उपखण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर अनुतोष चाहा गया है] अनुतोष के प्रयोजन से अपने ही दोष या निर्योग्यता का किसी प्रकार फायदा नहीं उठा रहा या उठा रही है, और

(ख) जहाँ कि अर्जी का आधार धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (i) [2][***] में विनिर्दिष्ट आधार हो वहाँ न तो अर्जीदार परिवादित कार्य या कार्यो का किसी प्रकार से उपसाधक रहा है और न उसने उनका मौनानुमोदन या उपमर्षण किया है अथवा जहाँ कि अर्जी का आधार क्रूरता हो वहाँ अर्जीदार ने उस क्रूरता का किसी प्रकार उपमर्षण नहीं किया है, और

[2][(खख) जब विवाह-विच्छेद पारस्परिक सम्मति के आधार पर चाहा गया है, और ऐसे सम्मति बल, कपट या असम्यक असर द्वारा अभिप्राप्त नहीं की गई है, और]

(ग) [3][अर्जी (जो धारा 11 के अधीन पेश की गई अर्जी नहीं है)] प्रत्यर्थी के साथ दुस्संधि करके उपस्थापित या अभियोजित नहीं की जाती है, और

(घ) कार्यवाही संस्थित करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है, और

(ङ) अनुतोष अनुदत्त न करने के लिए कोई अन्य वैध आधार नहीं है, तो ऐसी ही दशा में, किन्तु अन्यथा नहीं, न्यायालय तदनुसार ऐसा अनुतोष डिक्री कर देगा ।

विवाह विधियाँ (संशोधन) विषेयक, 2010 (विधेयक क्र, 41 सन् 2010) द्वारा धारा 23 की उपधारा (1) का प्रस्तावित संशोधन (अब तक प्रवृत्त नहीं)

उपधारा (1) में, खण्ड (क) में, शब्द और अंक "धारा 5" के पश्चात्, शब्द, अंक और अक्षर "या उन मामलों में जहाँ अर्जी धारा 13 ग के अधीन प्रस्तुत की गई है" अन्त:स्थापित किये जाएँ ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 16 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 16 द्वारा (27-5-1976 से) विलोपित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा द्वारा (27-5-1976 से) "अर्जी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व यह न्यायालय का प्रथमत: कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसी हर दशा में, जहाँ कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रहते हुए ऐसा करना सम्भव हो, पक्षकारों के बीच मेल-मिलाप कराने का पूर्ण प्रयास करे :

[1][परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), खण्ड (iii), खण्ड (iv), खण्ड (v), खण्ड (vi) या खण्ड (vii) में विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर अनुतोष चाहा गया है ।]

[2][(3) ऐसा मेल-मिलाप कराने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजन के लिए न्यायालय, यदि पक्षकार ऐसा चाहे तो या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे, तो कार्यवाहियों को 15 दिन से अनधिक की युक्तियुक्त कालावधि के लिए स्थगित कर सकेगा और उस मामले को पक्षकारों द्वारा इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को या यदि पक्षकार कोई व्यक्ति नामित करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय द्वारा नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को इन निर्देशों के साथ निर्देशित कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बारे में रिपोर्ट दे कि मेल-मिलाप कराया जा सकता है या नहीं तथा करा दिया गया है या नहीं और न्यायालय कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(4) ऐसे हर मामले में, जिसमें विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद द्वारा होता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय हर पक्षकार को उसकी प्रति मुफत देगा ।]

[2][23-क. **विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को अनुतोष --** विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी अर्जीदार के जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन के आधार पर चाहे गए अनुतोष का न केवल विरोध कर सकेगा बल्कि वह उस आधार पर इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष के लिए प्रतिदावा भी कर सकेगा और यदि अर्जीदार का जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन साबित हो जाता है तो न्यायालय प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा अनुतोष दे सकेगा जिसके लिए वह उस दशा में हकदार होता या होती जिसमें उसने उस आधार पर ऐसे अनुतोष की मांग करते हुए अर्जी उपस्थापित की होती ।]

24. वाद लंबित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय -- जहाँ कि इस अधिनियम के अधीन के होने वाली किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत हो कि, यथास्थिति, पति या पत्नी की ऐसी कोई

---

1 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 16 द्वारा (27-5-1976 से) जोड़ा गया ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 17 द्वारा (27-5-1976 से) अन्त: स्थापित ।

स्वतंत्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहाँ वह पति या पत्नी के आवेदन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि वह अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत हो :

[1][परन्तु कार्यवाही का व्यय और कार्यवाही के दौरान की ऐसी मासिक राशि के भुगतान के लिये के आवेदन को, यथासंभव पत्नी या पति जैसी स्थिति हो, पर नोटिस की तामील से साठ दिनों में निपटाएंगे ।]

25. **स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण --** (1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात किसी भी समय, यथास्थिति, पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि [2][***] प्रत्यर्थी उसके भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा कालिका राशि, जो प्रत्यर्थी अपनी आय और अन्य सम्पत्ति को, यदि कोई हो, आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को तथा [3][पक्षकारों के आचरण और मामले की अन्य परिस्थितियाँ] को देखते हुए न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, आवेदग या आवेदिका के जीवन-काल से अनधिक अवधि के लिए संदत्त करे और ऐसा कोई भी संदाय यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर सम्पत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन ओदश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से जो न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेशे में फेरफार कर सकेगा या उसे उपान्तरित अथवा विखण्डित कर सकेगा ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है, पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह सतीव्रता नहीं रह गई है, या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाहबाहा मैथुन किया है तो [3][वह दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसे किसी आदेश का ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, परिवर्तित, उपांतरित या विखण्डित कर सकेगा] ।

---

1 2001 के अधिनियम सं.49 की धारा 8 द्वारा (24-9-2001 से) अन्त: स्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा (27-5-1976 से) कतिपय शब्द विलोपित ।

3 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 18 द्वारा (27-5-1976 से) प्रतिस्थापित ।

26. अपत्यों की अभिरक्षा -- इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तवय अपत्यों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासंभव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय-समय पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबंध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात् इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसे पत्य की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-समय पर ऐसे आदेश और उपबंध कर सकेगा जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लंबित रहते ऐसी डिक्री या अन्तरिम आदेश द्वारा किए जा सकते थे और न्यायालय पूर्वतन किए गए किसी आदेश या उपबंध को समय-समय पर प्रतिसंहृत या निलंबित कर सकेगा, अथवा उसमें फेरफार कर सकेगा :

[1][परंतु भरण-पोश्ज्ञण और अवयस्क बालकों की शिक्षा सम्बन्धित आवेदन, लम्बित कार्यवाही में डिक्री प्राप्त करने के, को, यथासंभव प्रत्यर्थी पर नोटिस की तामील से साठ दिनों में निपटाएंगे ।]

***27. सम्पत्ति का व्ययन --** इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में, न्यायालय ऐसी सम्पत्ति के बारे में, जो विवाह के आवसर पर या उनके आसपास उपहार में दी गई हो और संयुक्त पति और पत्नि दोनों की हो, डिक्री में ऐसे उपबन्ध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे।

[2][**28. डिक्रियों और आदेशों की अपीलें --** (1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियाँ, उपधारा (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए उसी प्रकार अपीलनीय होगी जैसे न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलनीय होती है और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यत: होती हैं।

(2) धारा 25 या धारा 26 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए आदेश, उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, तभी अपीलीय होंगे जब वे अन्तरिम आदेश न हों और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होंगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यत: होती हैं।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

---

1 2001 के अधिनियम सं.49 की धारा 9 द्वारा (24-9-2001 से) अन्त: स्थापित ।

2 1976 के अधिनियम सं.68 की धारा 19 द्वारा (27-5-1976 से) धारा 28 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(4) इस धारा के अधीन हर अपील डिक्री या आदेश की तारीख से [1][नब्बे दिन की कालावधि] के अन्दर की जाएगी ।

28-क. डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन -- इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन उसी प्रकार दिया जाएगा जिस प्रकार उस न्यायालय द्वारा अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्रियों और आदेशों का तत्समय प्रवर्तन किया जाता है ।]

अध्याय 6
व्यावृतियाँ और निरसन

29. व्यावृतियाँ -- (1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हिन्दुओं के बीच अनुष्ठापित ऐसा विवाह, जो अन्यथा विधिमान्य हो, केवल इस तथ्य के कारण अविधिमान्य या कभी अविधिमान्य रहा हुआ न समझा जाएगा कि उसके पक्षकार एक ही गोत्र या प्रवर के थे अथवा, विभिन्न धर्मो, जातियों या एक ही जाति की विभिन्न उपजातियों के थे ।

(2) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात रूढ़ि से मान्यता प्राप्त या किसी विशेष अधिनियमिति द्वारा प्रदत्त किसी ऐसे अधिकार पर प्रभाव डालने वाली न समझी जाएगी जो किसी हिन्दू विवाह का, वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात् विघटन अभिप्राप्त करने का अधिकार हो ।

(3) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन होने वाली किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रभाव न डालेगी जो किसी विवाह को बातिल और शून्य घोषित करने के लिए या किसी विवाह को बातिल अथवा विघटित करने के लिए या न्यायिक पृथक्करण के लिए हो और इस अधिनियम के प्रारंभ पर लंबित हो और ऐसी कोई भी कार्यवाही चलती रहेगी और अवधारित की जाएगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।

(4) इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट कोई भी बात विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43) में अन्तर्विष्ट किसी ऐसे उपबंध पर प्रभाव न डालेगी जो हिन्दुओं के बीच उस अधिनियम के अधीन, इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व चाहे पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों के सम्बन्ध में हो ।

---

[1] 2003 के अधिनियम सं.50 की धारा 5 द्वारा (23-12-2003 से) "तीस दिन की कालावधि" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

30. **निरसन --** [निरसन तथा संशोधन अधिनियम, 1960 (1960 का 58) की धारा 2 और प्रथम अनुसूची द्वारा (26-12-1960 से) निरसित ।]